हिंदी और ओड़िया कहानियों में ग्रामीण जीवन मूल्य : संदर्भ – (नवाँ दशक)

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	**3-6**
अध्याय-1 : सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्थिति	**7-13**
1.1 नवें दशक की सामाजिक और आर्थिक स्थिति	
1.2 बीसवी सदी के उत्तरार्ध में राजनैतिक स्थिति	
अध्याय-2 : हिंदी कहानियों में ग्रामीण जीवन	**14-37**
2.1 किसान जीवन : सर्पदंश	
2.2 स्त्री जीवन : तिरिया जनम एवं तिरिया चरित्तर	
2.3 अंधविश्वास : महामारी एवं दहलीज पर न्याय	
2.4 निम्न वर्ग : कसाईबाड़ा	
2.5 पारिवारिक संबंध विघटन : हरिहर काका एवं छप्पन तोले की करघन	
2.6 ग्रामीण संस्कृति : नौटंकी	
अध्याय-3 : ओड़िया कहानियों में ग्रामीण जीवन मूल्य	**38-60**
3.1 किसान जीवन : साहब देवता	
3.2 स्त्री जीवन : पाटदेई	
3.3 अंधविश्वास : अपमृत्यु की भूमिका एवं रिष्ट	
3.4 निम्न वर्ग : उन्नयन	
3.5 पारिवारिक संबंध में विघटन : सहोदर	
3.6 ग्रामीण संस्कृति : अभिशप्त गंधर्व	

अध्याय-4 : हिंदी और ओड़िया कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन 61-68

4.1 किसान जीवन : सर्पदंश और साहबदेवता के संदर्भ में

4.2 स्त्री जीवन :तिरिया जनम और तिरिया चरित्तर एवं पाटदेई के संदर्भ में

4.3 अंधविश्वास : महामारी, दहलीज पर न्याय और रिष्ट, अपमृत्यु की भूमिका के संदर्भ में

4.4 निम्न वर्ग : कसाईबाड़ा और उन्नयन के संदर्भ में

4.5 पारिवारिक संबंध विघटन : हरिहर काका, छप्पन तोले की करधन और सहोदर

4.6 ग्रामीण संस्कृति : नौटंकी और अभिशप्त गंधर्व

उपसंहार **69-72**

संदर्भ –सूची **73-75**

भूमिका

भारत की सबसे अधिक जनता गावों में निवास करती हैं। इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि भारत को सही अर्थ में अगर समझना है, तो हमें ग्राम की ओर चलना होगा। अविभाजित भारत में लगभग 700,000 गाँव थे। विभाजन के बाद यह संख्या कम हो गयी है, किंतु जनसंख्या में ग्रामीण और नगरी लोगों का अनुपात प्राय:वही है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार भारत की जनसंख्या का 70 प्रतिशत गांवों में रहता है। इतना ही नहीं, शहरों के अपरिमित विस्तार से शहर में कई-कई गाँव बस गये हैं। वैसे तो गाँव अपने आप में एक अमूर्त संस्था है, लेकिन गाँव के सामाजिक सरोकार, गाँव का विविध आर्थिक समस्याएँ, गाँव का राजनीतिक-सांस्कृतिक परिदृश्य ही उसे मुर्तित-आकारित करता है। कहानी जीवन के पीछे-पीछे चलती है, उसमें जीवन का यथार्थ रुप अभिव्यक्त होता है, अत: कहानी साहित्य जीवन, समय और समाज को उसकी समग्रता और वास्तविकता में ही पकड़ने का उपक्रम करता है। इस आरंभ को मूर्तिमान करने में अनेक कहानीकारों ने अपना साहित्यिक योगदान दिया है।

भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम आधुनिक कहानी को जन्म देने का श्रेय ओड़िया कथाकार फकीरमोहन सेनापति(1843-1911) की है, जिन्होंने 1868 से 1870 के बीच 'लछमनिया' नाम की एक कहानी लिखी थी। उस कहानी के बारे में वे स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखते है "उस 'बीधदायिनी' पत्रिका में मैंने एक कहानी लिखी थी, उसका नाम है 'लछमनिया'। सम्भवत: उत्कल की वह प्रथम प्रकाशित कहानी है." अत: हो सकता है,लेखक की और भी प्रकाशित कहानियाँ रही हो,जो संभव है कि लछमनिया की तरह ही काल-कवलित हो गई हो। लछमनिया न केवल उत्कल की प्रथम कहानी है, बल्कि प्रथम भारतीय कहानी होने का श्रेय उसी का है, इसमें दो मत नहीं है। फिर लेखक के ही अनुसार उस कहानी का ही परिवर्द्धित तथा विकसित रुप फकीरमोहन के प्रसिद्ध उपन्यास 'छ माण आठगुंठ' में देखने को मिलता है। उसके पश्चात दीर्घकाल तक फकीरमोहन ने और कोई कहानी नहीं लिखी। प्रथम दस वर्षों तक उन्हे देशी राज्यों में घूम-घूम कर काम करना पड़ा और फिर अपने बड़े बेटे की मृत्यु के कारण शोक संतप्त माता को सांत्वना देने के लिए उन्होंने 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथों का पद्यानुवाद किया। बाद में 1898 में उन्होंने 'रेवती' नाम की एक कहानी लिखी, जिसको आज ओड़िया साहित्य में प्रथम कहानी कहलाने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने कुल 20-25 कहानियां लिखी थी, जिनमें से अधिकांश कटक और बालेश्वर के (ओड़िया) ग्रामीण जीवन पर आधारित

है। उन्होंने उनीसवीं सदी के मध्यम वर्ग का मार्मिक तथा यर्थात चित्र खींचा, तत्कालीन समाज के कुसंस्कार अंधविश्वास, अशिक्षा, दुख-दुर्दशा, संकीर्णता आदि के चित्र उनकी कहानियों में जीवंत हो उठे हैं। ('रेवती' में अशिक्षा एवं कुसंस्कार के विरुद्ध विद्रोह है तो 'डाकमुन्सी' में पारस्परिक ईमानदारी और नैतिकता का विघटन स्प- ष्ट् है। तथाकथित अंग्रेजी शिक्षा और सभ्यता के बहाव में आकर अर्धशिक्षित पुत्र का पिता के प्रति अत्याचार तत्कालीन समाज में उभरती रुग्ण मनोवृति का परिचायक है।

ओड़िया कहानी आंदोलन में फकीर मोहन युग के बाद सत्यवादी युग, सबुज युग इसके पश्चात इसी शताब्दी के तीसरे दशक में ओड़िया कहानी के क्षेत्र में साम्यवादी चिंता और चेतना को लेकर भगवती चरण पाणिग्रही, सच्चिदानंद राउतराय, रघुनाथ दास और रामप्रसाद सिंह आदि प्रेवेश करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ओड़िया कहानी जगत में नित्यानंद महापात्र जैसे गांधीवादी कथाकार, गोपीनाथ मोहांति जैसे देहाती–दुनिया के कुशल चित्रकार तथा सुरेन्द्र मोहांति जैसे संस्कृति सचेतन कथाकार का आविर्भाव हो चुका था। परंतु स्वातंत्र्योत्तर काल में ही उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास दृष्टिगत होता है। कुल मिलाकर इस युग की कहानियों में मुख्यत: मानवतावाद, गांधीवाद, सामाजिक संस्कारबोध, राष्ट्रीय चेतना, रोमांटिक भावना, मानवीय संवेदना, प्रगतिवादी भावधारा दिखाई देती है और क्रमश: कहानी की धारा मोनबिश्लेषण की ओर मुड़ती हुई नजर आती है।

नवें दशक के प्रारम्भिक में एक ओर युवा कहानीकार वर्ग का उदय होता है। उस वर्ग के हस्ताक्षर है – हृषिकेश पंडा, गौरहरि दास, सदानंद त्रिपाठी, विष्णु साहू, प्रशांत मोहांति, अजय स्वाई, परेस पटनायक, सरोजिनी साहू, जयंती रथ, कविता बरिक, दास बेनहुर, श्रीनिवास पंडा, विराज मोहन दास, तुषारकांति पंडा, स्वर्ण देवी, ज्योती नंद, कैलाश पटनायक, सुस्मिता वागची, सुरेंद्र मिश्र आदि । वस्तुत: यह कहानीकार नई उपनिवेशवादी चेतना के रचनाकार हैं। इनकी कहानियों में वे दयनीय चित्र मिलते हैं, आर्थिक उदारीकरण से ग्रामीण जीवन में जो खतरा उत्पन्न हुआ था, वस्तुत: जो ग्रामीण जीवन भारतीय समाज व्यवस्था में तितर-बितर हो गया। गाँव की शिक्षित पीढ़ी या तो शहर की ओर भागी। पढ़े-लिखे और अनपढ़ युवा वर्ग तथाकथित राजनीतिज्ञों का दलाल बना। सम्भ्रांत और उच्च शिक्षित वर्ग देहात में बसना पसंद नहीं किया। इस दशक के कहानीकारों ने यथार्थवादी ढ़ंग हुए परिवर्तनों का चित्रण किया। अपितु परिवर्तन के

इस नई पीढ़ी जीने के लिए काफी कुछ संघर्ष की पीड़ा झेलती है। कहानी में इसका जीता-जागता चित्र मिलता है। कहानी का कैनवास जैसे बहुत बड़ा है वैसे ही समकालीन जीवन का सही प्रतिफलन भी हुआ है।

हिंदी कहानी की वास्तविक विकास-यात्रा सन् 1900 इ.से सरस्वती प्रत्रिका के प्रकाशन के साथ शुरू होती है। इसमें हिंदी के श्रेष्ठ कहानीकारों की कहानियों को प्रकाशित करके हिंदी कहानी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इसी पत्रिका के माध्यम से किशोरीलाल गोस्वामी, आचार्य शुक्ल, बंगमहिला, वृन्दावनलाल वर्मा, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, कौशिक, प्रेमचन्द आदि कहानीकार प्रकाश में आये। हिंदी कहानी की विकास यात्रा एक ऐसी यात्रा है जिसमें बहुत जल्दी-जल्दी मोड़ आते गये और हिंदी कहानी परिवर्तनों के बीच से गुजरती हुई आज ऐसे बिंदु पर पहूँच गयी है जहाँ से उसके विकास की अनेक रूप-रेखाएँ स्पष्ट होती दिखाई पड़ती हैं।

नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी आदि के दौर से गुजरती हुई हिंदी कहानी ने जीवन के यथार्थ को लगातार ज्यादा गहराई से, ज्यादा आत्मीयता से, ज्यादा गहरी जीवन दृष्टि से और ज्यादा वैचारिकता से उपस्थित किया है। इन आदोलनों के कहानीकारों और उनकी रचनाओं पर गहराई से विचार किया जाय तो यह तथ्य सहज ही उजागर होता है कि अपनी भाषा और शिल्प के नये प्रयोग के बीच जीवन के बदले हुए संदर्भो को कहानी की रचना का विषय बनाने में कोई बुनियादी अंतर नहीं है। कहानीकारों की भीड़ में अपनी-अपनी पहचान कायम रखने और इसे स्थाई बनाने की महत्वाकांक्षा ही अधिक रही है। इन कहानीकारों ने भूमंडलीकरण, नयी यांत्रिक तकनीक, सूचना प्रौद्योगिकी, मीडिया उद्योग, संचार क्रांति, लोकतंत्र और समाजवाद वर्ग-भेद, अस्पृश्यता, संवैधानिक व्यवस्था, विधि का राज्य आदि, नारों के बीच पिसती हुई मनुष्यता के अपरम्पार दुख पर राग और संवेदना की उंगली रखने के लिए नयी भाषा और शिक्षा की खोज की है।

नवें दशक के कहानीकारों ने ग्रामीण नगरीय एक महानगरीय जीवन की परिवर्तित सामाजिक स्थितियों, दशाओं तथा संबधों का प्रामाणिक चित्रण किया है। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जीवन में बड़ी तेजी से परिवर्तन दिखायी दिये हैं। फलत: परंपरागत ग्रामीण व्यवस्था नये रुप में सामने आती है। आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक धरातल पर ग्रामीण परिवेश नया रुप ग्रहण करता दिखायी दिया। सन् साठ के बाद ग्रामीण जीवन में परिवर्तन की गति तेज हुई है।

आठवें नवें दशक में आकर पूरा ढांचा बदला हुआ दिखाई देने लगा जीविका के परंपरागत साधन जब अपर्याप्त पड़नें लगे तो बहुत बड़ी संख्यां में लोग शहरों में विस्थापित हुए। विकास योजनाओं ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक नया रूप दिया। स्थानीय निकायों, विधान सभाओं एवं संसद के चुनावों ने ग्रामीण जीवन के वायुमण्डल में गुटबंदी का जहर घोल दिया। आर्थिक दौड़ में ग्रामीण परिवेश में जो दरार आयी उसे राजनीति ने चौड़ा कर दिया। उन खंदकों में जातिधर्म की जड़े फैलने लगी और मानवीय संबंधों का गंदा पानी उन्हें सींचने लगा। संयुक्तो परिवार का विघटन प्रेमचंद युग की कहानियों में ही झलकने लगा था यहाँ आकर इसका पुरी तरह लोप हो गया। ग्रामीण जीवन में ऊपर से ठीक दिखाई-देने के बावजुद भी संबधो और मानवीयता के स्तर पर खोखले दिखाई देते हैं। इस दशक के महत्वपूर्ण कथाकारों में रमेशचन्द्र शाह, स्व्यंप्रकाश, विवेक राय, संजीव, मिथिलेश्र्वर, उदय प्रकाश, धीरेंद्र आस्थाना, राजकुमार गौतम, स्वदेश दीपक, अखिलेश शिवमूर्ति, प्रियंवद और सृंजय आदि के नाम उल्लेखनीय है। महिला कथा लेखन में मैत्रयी पुष्पा, गीतांजली श्री, प्रभा खेतान, क्षमा शर्मा, अलका सरावगी एवं ऋता शुक्ला आदि हैं। दलित विमर्श के कथाकार के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकी, श्योराज सिंह बैचेन, मोहन नैमिशराय, कंवल भारती, सूरज पाल, संजय खाती, जयप्रकाश कर्दम आदि ने पहचान बनाई है।

इस लघु-शोध में हिंदी और ओड़िया के ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंधित कुछ चुनिंदा कहानियों को ही शामिल किया गया है।

प्रथम अध्याय

1. नवें दशक की सामाजिक और आर्थिक स्थिति

सन् 1947 में भारत आजाद हुआ। आजादी के बाद परिवर्तन की लहर देश में आई और ग्रामों तक पहुंच गयी। योजनाबद्ध अर्थव्यावस्था के कारण ग्राम सुधार के लिए देश की बहुत बड़ी पूँजी खर्च होने लगी। ग्रामीण सामुदायिक विकास के लिए 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की बुनियादी बात यह थी कि इसमें ग्रामीण जनता की सेवा हो और यह यथासंभव अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे। 1980 में भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' का निर्माण किया। जिसका उद्देश था ग्रामों में रोजगार के अवसर अधिकाधिक निर्माण किये जाय ताकि ग्रामीण इलाकों में प्रत्येक भुमिहीन किसान परिवार के कम-से-कम एक आदमी का एक सौ दिन रोजगार उपलब्धो हो सकें और ऐसी स्थायी पूंजी पैदा की जाए जिससे देहात का औद्योगिक ढांचा इतना मजबूत बने की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास हो। भुतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 1989 में 'जवाहर रोजगार योजना' बनायी। इस योजना कि विशेषता थी, इसे प्रत्येक पंचायत तक पहुंचाना। इस प्रकार भारत में रहने वाले लाखों परिवार जो निर्धन रेखा के नीचे हैं, ग्राम योजना का लाभ उठा सकेगें। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। भारत ग्रामों का बना हुआ है। देश का विकास करना हो तो ग्रामों का विकास करना आवश्यक है । इसी बात को ध्यान में रखकर 'ग्राम विकास' की संकल्पना सामने आयी। 'ग्राम विकास' यह वितरण संकल्पना है, इसमें ग्रामीण विकास से संबंधित सभी घटकों का विकास अपेक्षित है। इसमें कृषि, उद्योग, छोटे उद्योग, बड़े उद्योग, यातायात, बाजार, वित्त, शिक्षा स आदि का समावेश किया जाता है। जब इन सभी घटकों का विकास होगा तब ही ग्रामों का विकास होगा। ग्रामों का विकास होगा तो देश का विकास होगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि को अनन्य साधारण महत्व है। 'कृषि' भारतीय अर्थव्यवस्था की रीड़ की हड्डी है। भारतीय कृषि ग्रामों में बिखरी हुई है। ग्रामीण अंचलों का विकास करने के सिवाय देश का विकास संभव नहीं होगा। ग्राम का विकास करने हेतु भारत सरकार ने ग्रामों में वित्त विवरण व्यवस्था का संघटनात्मक प्रयास किया। सरकार ने बैंकों का राष्ट्रीकरण, सरकारी कृषि संस्थान, अग्रणी बैंक योजना, प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों का निर्माण, कृषि वित्त निगम, नाबार्ड बैंक आदि का निर्माण किया। कृषि का दीर्घकालीन विकास करने के लिए

'भूमि विकास बैंक' का विकास किया गया। यह बैंक किसानों को कुआं खुदवाना, ट्रैक्टर, कृषि उपयोगी यंत्र, बिजली पम्प आदि कृषि उपयोगी वस्तुओं को खरीदने के लिए कम ब्याज पर दीर्घ समय के लिए ऋण देती हैं। इन सभी विकास योजना पर करोड़ो रूपये खर्च किए जा रहे हैं फिर भी आम जनता का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाया। शोषण के चक्र से वह मुक्त् नहीं हो पाये हैं। जमीदारी उन्मुंलन, भुमि सुधार, सरकार, ग्राम-शिक्षा आदि पर निरन्तर जोर दिया जा रहा है। फिर भी आम जनता जहां है वहां ही है। इन सारी सुविधाओं और सुधारों का लाभ वही पूंजीपति और जमीदार उठा रहे हैं जो आजादी के पूर्व भी अपने शक्ति को बनाये रखे थे। असमय परिवर्तन के साथ उन्होंने सामन्ती व्यक्तित्व को त्यागकर उदारमतवादी रूप धारण कर लिया। वह राजनीतिक दलों, शिक्षा-परंपरा संस्थाओं, सहकारी यंत्रणाओं में घुस गया। राजनीतिक सत्ता केन्द्रों को उसने अपने हाथ में ले लिया है। इसी कारण ग्रामीण जनता सभी लाभों से वंचित रह गयी है।

ग्रामीण विकास में सरपंच की भूमिका अहम होती है। "बलवंतराय मेहता समिति' की सिफारिश से पंचायत राज की संकल्पना सामने आयी। इसमें जिला, तहसील और ग्राम स्तर पर जिला परिषद, पंचायत समितति और ग्राम पंचायत की स्थापना की गयी। ग्राम विकास योजना को कार्यान्वित करने के लिए 'ग्राम सेवक' पद का निर्माण किया गया। 1960 के आसपास ग्राम सेवक प्रशिक्षण केंद्र का निर्माण किया गया। ग्राम सेवक शासन का प्रतिनिधि है।"[1] वह सरपंच को साथ लेकर ग्राम सुधार करता है। ग्राम सुधार के लिए सरपंच को भी प्रशिक्षण देना आवश्यक है। ग्राम विकास में सरपंच प्रमुख होता है। प्रसिद्ध विचारक डॉ.रा.रा.कोठीखाने ने कहा है- "ग्राम विकास के लिए सरपंच को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। सरपंच "ने ग्राम सेवक के साथ तालूका पंचायत समिति से संपर्क रखकर उनका मार्गदर्शन लेकर अनेक ग्राम विकास योजना पंचायत समिति और जिला परिषद से पारित कर लेना चाहिए। ग्राम पंचायत यह 'लोकशाही विकेंद्रीकरण' की अंतिम तथा महत्वपूर्ण संस्थाय होने के कारण विकास की दृष्टि से ग्राम सेवक के साथ मिलकर कार्य करने से ही ग्राम का विकास होगा। इन विकास योजना पर करोड़ो रूपये खर्च किये जा रहे हैं फिर भी आम जनता का सर्वांग विकास नहीं हो पाया। शोषण के चक्र से वह आज भी मुक्ते नहीं पाये हैं। जमीदारी उन्मूलन, भूमिसुधार, सरकार, ग्राम-शिक्षा आदि पर निरंतर जोर दिया जा रहा है। फिर भी आम जनता जहां है वहाँ ही है। इन सारी सुविधाओं और सुधारों का लाभ वही पूंजीपति और जमींदार उठा रहे है।" जो आजादी के पूर्व भी अपने अस्तित्व को बनाये

रख सकते थे। असमय परिवर्तन के साथ उन्होंने सामंती व्यक्तित्व को त्याग कर उदारतमवादी रूप धारण कर लिया। वह राजनीतिक दलों, शिक्षा-संस्थांओं, सहकारी यंत्रणाओं में घुस गया। राजनीतिक सत्ता केन्द्रों को उसने अपने हाथ में ले लिया है। इसी कारण ग्रामीण जनता सभी लाभों से वंचित रह गयी है।

आजादी के कुछ वर्षों बाद आम जनता के सपने धीरे-धीरे टूटते चले गये। राजनीति व्यक्तिगत स्वार्थ के कीचड़ में डूबते चली गयी और नेता लोकहित की बजाय स्व-हित की चिंताओं में डूबने लगे। जनता की आस्था टूटती चली गयी। आम जनता को इन्हीं क्रूर स्थितियों-विसंगतियों का शिकार होना पड़ा, जो पराधीन भारत में थी। देश का विशिष्ट वर्ग पहले भी शासक था और आज भी शासक है। मध्य वर्ग या तो छलांग लगाकर उच्चवर्ग में शामिल हो गया था। संपति बेच-बेच कर खाता रहा। निम्न मध्य- वर्ग किसान से मजदूर बन गया। भारतीय व्यवस्था ने आदमी को आर्थिक आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया है। एक वर्ग हैं सुविधा भोगियों का तो दूसरा साधन हिनों का। अपनी सुख-सुविधा के लिए सुविधा भोगी वर्ग साधन भोगी वर्ग का शोषण करता आया है। आर्थिक विषमता की खायीं दिन-पर-दिन बढती जा रही है। धन का केंद्रीकरण हो रहा है। आर्थिक विषमता के कारण सामान्य आदमी की समस्याएं बढ़ती ही जा रही हैं।

आजादी के बाद ही भारत में प्रजातंत्रीय शासन-व्यवस्था का निर्माण किया गया। सन् 1950 में सभी रियासतों का विलीनीकरण किया गया। नेताओं ने देश में समाजवाद की घोषनणा की। जिसके लिए कुछ कदम उठायें गयें जमीदारी उन्मूलन अधिनियम, भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारण, आधाभूत उद्योग का राष्ट्रीयकरण, भूमिसुधार कार्यक्रम आदि नियमों का निर्माण किया गया। इस कारण व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन तो आया पर 'समाजवाद' का निर्माण नहीं हो पाया। आज भी किसी न किसी रूप में जमींदार और धनी वर्ग ही सत्ता पर हावी है। डॉ.अरूणा लोखंडे इस संबध में कहती हैं- "जमींदारी प्रथा के टूटने के बाद नई प्रथाएं गाँव के आर्थिक स्थितियों को देती रही। जमीदारी प्रथा के साथ सामंती चरित्र समाप्त हो गया, लेकिन जनतांत्रिक और राजनीतिक पद्दतियों का लाभ एक ऐसे वर्ग को हुआ जो सामंती व्यवस्था से शोषित था और आज के जनतांत्रिक व्यवस्था में अपने से भिन्न बहुसंख्यक जाति का शोषक बना हुआ है।

ग्रामीण आम जनता की स्थिति आज भी उसी तरह की है जैसे आजादी के पूर्व थी। सांमतवाद और राजतंत्र कब का मर चुका है। विदेशी दासता समाप्त हो चुकी है। हम स्वतंत्र हो चुके हैं। राजाओं के विशेष अधिकार छीने जा चूके हैं, लेकिन दूसरी ओर प्रजातंत्र के नाम पर फिर से सामंतवाद जनता को साम, दाम, दंड भेद की नीति के आधार पर फुसलाकर वोट पाने की राजनीति ने नेताओं की एक फौज तैयार की है। जो 'सेवा के बदले मेवा' खाने में ही विश्वास करता है। बड़े नेता का अनुरकण छोटे नेता करते रहे और छोटे नेता का अनुकरण उससे भी छोटे नेता करते रहे हैं। अनुकरण की यह परंपरा गांवों तक पहुंच गयी है। सभी पर सत्तासीन होने का भुत सवार है। आज सेवक बनने के लिए कोई तैयार नहीं है। वर्तमान नेता अपने क्षेत्र के सामंत होते हैं। प्रजा के कल्याण हेतु बनायी गयी सभी सहकारी तथा सरकारी संस्थाओं पर इनका एकाधिकार होता है। इनके कर्मचारियों को वे राजनीति का मोहरा बनाते हैं। नगर से लेकर छोटे गांवों तक दरबारों की एक श्रृंखला तैयार हो गयी है। इस दरबारी संस्कृति ने हमारी प्रगति को रोक रखा है।

स्वरतंत्रता के पश्चात गांवो में पंचायती राज्य और प्रौढ़ मताधिकार प्रदान किया गया है, इसलिए भारतीय गाँव राजनीतिक दलों के आकर्षण के केंद्र बन गये हैं। इन्हीं राजनीतिक दलों के कारण ही गाँव की राजनीति दिशा बदल गयी है। 'पंचायत राज' का उद्देश ग्रामीण जीवन में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना करना था किन्तु महानगरों की राजनीति से जुड़कर अनेक विघटनकारी तत्व पंचायत राज में समाविष्ट हो गए हैं। नवें दशक की ग्रामीण जीवन की कहानियाँ इस ग्रामीण राजनीति का यथार्थ चित्रण करती है।

1.2 बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में राजनैतिक स्थिति

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में धाराओं और अंतर्विरोधो की स्थितियाँ बदलती रही हैं। उदाहरण के लिए, नेहरू काल में निर्माण की धारा बही; इस धारा में निर्माण विस्थापन, वंचन और सीमान्तीकरण साथ-साथ चले, आदिवासी क्षेत्रों में औद्यौगिकरण की प्रक्रिया सक्रिय हुई एक और निर्माण हुआ, दूसरी और लाखों अदिवासियों का विस्थापन भूमिविहीनकर, पलायन और असंगठित सर्वघटकरण हुआ। आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी तत्वों की घुस पैठ बढी, यौन-शोष, भू-लूट और वनकटाई का सिलसिला निर्ममता पूर्वक शुरू हुआ। इसने वन क्षेत्रों के मूल निवासियों और गैर आदिवासियों के बीच नए अन्तकविरोधों को जन्म दिया। इस पूरे काल में राष्ट्रीय स्तर पर

एकाधिकारवादी पूंजी का दबदबा रहा और ग्रामीण भारत के कृषि-सबंध लग भग सामंती रहे। खेतिहार श्रमिकों के क्षेत्र में बेगार, बंधुओ मजदूरी, अर्धदास प्रथा छाई रही। जजमानी प्रथा के अंतर्गत 'संरक्षण एवं शोषण शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व रूप में बने रहे।

"सन 1965 से 1977 के दौरान विभिन्न आंदोलनों के मध्यम से आर्थिक एवं राजनितिक अंतर्विरोध आक्रमक ढंग से उभरे लेकिन उनका समाधान नहीं हुआ बल्कि उन्हें डिफ्यूज कर दिया गया। इस दौर में एकाधिकारवादी पूंजी और मजबूत हुई, पर छोटी भी उभरी। लघु उद्योग क्षेत्रों के पहचान बनी। एकाधिकारवादों पूंजी और लघु पूंजी के बीच अर्न्तविरोध शुरू हुआ। वैसे इंद्रिरा काल में उपभोक्तावादी प्रक्रिया शुरू हुई और विलासपूर्ण सामग्री के लिए पश्चिमी राष्ट्रों के साथ कई समझौते किए गए।"[2]

सन 1980 में इंदिरा-वापसी ने कट्टरवादी धार्मिक साक्तियों को प्रोत्साहित किया। समाज का एक सुप्त अन्ताविरोध जाग गया, केंद्रीय सत्ता-प्रतिष्ठान और कट्टरतावादी धाम्रिक शक्तियों के बीच अन्तरविरोधों ने हिंसात्माक शक्ल अख्तियार कर ली, जिसकी परिणति सन् 1984 में स्वर्ण मंदिर में –ब्लू स्टार और खालिस्तान की मांग में हुई, उसी वर्ष तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरागांधी की हत्या ने भारतीय राष्ट्र -राज्य के सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक परिद्दश्य में एक त्रासदीपूर्ण आयाम जोड़ा, जिसके प्रभाव आज तक दिखाई देते हैं। इस दौर में बृहत स्तर यानी केंन्द्रीय आर्थिक-राजनीतिक शक्तियां और सूक्ष्म स्तर पर यानी क्षेत्रीय सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक शक्तियों के बीच प्रतिद्वन्दिता पहले से अधिक तीव्र हो गइ। राजीव काल में इसे और अधिक गति दी। 1984 से 1989 के बीच राजीव गांधी ने कम्युपटरी संस्कृति की शुरआत करके भारतीय समाजा को नई महत्वाकांक्षाओं से लैस करने का प्रयास किया' उच्च कोटी की प्रद्योगिकी भारत में पहुंची, लेकिन 'हाई टेक' की पहुंच समाज की ऊपरी व चिकनी परत तक ही रही: इसका रिसाव मध्यमम व निचली सतह को नहीं छू सका। राजीव गांधी भारतीय समाज के उत्पा:दन-संबधो के चरित्र से बिलुकल अनभित थे। उन्होंने समाज की ऊपरी परत को ध्यान में रखकर ही हाई टेक को आमंत्रित और उसका उपयोग किया। नतीजा यह निकला की उनके और समाज के बीच दूरी बढ़ती गई। एक प्रकार से संवाद हीनता की स्थिति पैदा हो गइ्र। वे नई पूंजी और हाई टेक से उत्पनं अन्त विरोधों को भी नहीं समझ सके। सत्ता के खेल की दृष्टि से भी वे बिल्कुल बच्चे थे। इसी नादानी में उन्होंने सन 1985 में सत्ता के दलालों के खिलाफ जंग की घोषणा कर दी, जिसमें

वे स्वंय सन 1989 के चुनावों में बुरी तरह से पराजित हो गए। बोफोर्स कांड ने उन्हें अंतिम समय तक उबरने नहीं दिया। आज तक बोफोर्स कांड का प्रेत उनके नाम का पीछा कर रहा है।

संदर्भ-सूची

उपसंहार

नवां दशक हिंदी कहानी आंदोलन से मुक्त है। कहानीकार किसी भी आंदोलन से मुक्त स्वतंत्र लेखन करते रहे। इस दशक में अपने परिवेश की संवेदनाओं से रूबरू कहानीकारों ने रचनात्मक अभिव्यकति की कहानी में दलित, स्त्री, व्यक्ति स्वतंत्रता पर बल दिया गया। पर ग्रामीण जीवन के कथाकार के रूप में गिने-चुने कहानीकार सामने आते है। कहानीकार संजीव के शब्दों में "हमारे पास प्रेम से लेकर सेक्स और समलैंगिकता तक की कहानियाँ है, युवा से लेकर प्रौढ़ तक- सभी की कार्पोरेट जगत की कहानियाँ है। महानगरीय और समस्याओं और चरित्र पर कहानियाँ है, नारी-विमर्श, एनआरआई है। कॉल सेंटर की कहानियाँ है। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक भ्रष्टाचार करके एक्सपोजर लिटेरेचर है। किंचित आदिवासी और दलित-लेखन के क्षितिज भी कुछ खुलने लगे हैं, लेकिन गाँव, किसान, कृषक, मजदूर, खेती, बेरोजगारी और सेज तथा बूट से उत्पन्न विस्थापन और किसानों की आत्महत्याएँ नहीं है, शोषण के बदले आयाम नहीं है।"

कथाकार संजीव अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्त करते हैं। आलोचकों की दृष्टि में उनकी कहानी के पात्र को 'हाशिये के लोग' समझा जाता है। अपनी कहानी के संदर्भ में संजीव की दृष्टि उल्लेखनीय है। 'कहानी मेरे लिए मौज-मस्ती का अंग नहीं है जो गुदगुदा सके। जहां जख्म और फफोलें हैं, वहाँ सोच को भटकाना मैं जघन्य अपराध मानता हूँ, अतः उस तरह के अफीम के व्यापारियों से हमारी राह अलग है। अगर जख्म रिसते हैं तो इस हकीकत को छुपाना, कराह और आक्रोश के कंठस्वर को रोकना आत्मघात और कायरता है। इसलिए निदान के लिए सभी तरह के तर्कसंगत प्रयासों को जुबान देना मैंने अपना फर्ज समझा है।"

संजीव की कहानी में महामारी, गांवों की अशिक्षा, अंधविश्वास, भुखमरी का दस्तावेज़ है। गाँव में वसंत रोग को शीतला माई का प्रकोप माना जाता है। झाड-फूँक, पूजा-पाठ होने लगता है। महामारी के कारण लोग आम और आम की गुठलियों को भोजना बनाते हैं। ये वह गाँव है जहां आधुनिकता का नामोनिशान नहीं है। इनकी समस्याओं को सुलझाए बिना उन्हें हम समाज के मुख्यधारा से जोड़ नहीं सकते। 'नौटंकी' की कहानी में भले ही पात्र महानायक के रूप में मंच पर उपस्थित हो उनके जीवन यथार्थ सम्पूर्ण भिन्न है। पेट पालने के लिए उन्हें तरह-तरह के अभिनय

करने पड़ते है। ग्रामीण संस्कृति, कला को जीवित रखने में उनका योगदान है, पर वे सिर्फ एक माध्यम है उन्हें अभिनय के मुताबिक उचित मूल्य भी नहीं मिलता। सर्कस में अभिनय करने वाले कलाकारों की तरह और किसी के हाथों के खिलौने बने हुए हैं।

साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत महापात्र नीलमणि साहू की कहानी 'अभिशप्त गंधर्व' कलाकारों का अभिनय जीवन को प्रस्तुत करता है। उनकी दृष्टि में आज के हर इंसान अभिशप्त गंधर्व है। इन्सानों के सारे स्वप्न, आशाएँ वास्तविक जीवन की कठोरता के सामने पस्त हो जाता हैं। 'अभिशक्त गंधर्व' की कहानी कलाकारों, लोकगीत, नाटक के चरित्रों की विशिष्टताएं बयान करती है। कलाकार अपने कला के माध्यम से दर्शक और श्रोता को अद्भुत लोक की और ले चलते हैं। लोककला के प्रति रुचि के कारण कथाकार सिर्फ स्वप्नलोक की बात नहीं करते है बल्कि वास्तविक जीवन को निकट से दिखाते हैं। कलाकार के बारे में उनकी सोच थी "गंधर्व जब भगवान के पास थोड़ी सी भी गलती कर देते है तब वे अभिशाप पाकर पृथ्वी में मानुषी के रूप में जन्म लेते हैं और इसी अभिराम की तरह दिन में हल जोतते तथा, रात को गाने बजाने में मसगुल रहते हैं।"

"अपमृत्यु की भूमिका कहानी के कथाकार 'दास बेनहुर' समाज में व्याप्त अंधविश्वास को अभिव्यक्ति दी है।" साथ ही साथ इसको प्रश्रय देने वाले धर्म के ठेकेदारों के स्वार्थ साधन को दिखाया है। गांवो में उल्लू का बोलना, घर के ऊपर गिद्ध का बैठना, सियार बोलना, सपने में भैंस को देखना आदि अपशगून माना जाता है। जिसके चलते कथानायक न केवल नये घर को खोता है बल्कि अपमृत्यु का शिकार बन जाता है। आज भी बड़े-बड़े पूंजीपति करोड़ो रूपएं में बनाए घर में वास्तुदोष के कारण रहना नहीं चाहते। हिन्दी कथा साहित्य की प्रमुख लेखिका चंद्रकांता की कहानी 'दहलीज पर न्याय' अंधविश्वास और शोषण को एक साथ प्रस्तुत करती है। पाँच साल के बाद रुक्की की कोख में जन्म हुए बच्चे का बलिदान के लिए महंत बाध्य करता है। पुलिस के द्वार पर अभियोग के बाद भी रुक्की की शिकायत अनसुनी कर दी जाती है। कहानी में महंत, सरदार, पुलिस का घिनौना चेहरा सामने आता है।

प्रतिभा राय की कहानी 'रिष्ट' में अंधविश्वास का चित्रण है पर 'दहलीज पर न्याय' की कथानायिका की तरह वह आवाज नहीं उठा पाती। दोनों की समस्याओं में सामान्य भिन्नताएँ है।

इसका कारण हिन्दी और ओड़िया समाज व्यवस्था में अंतर है। 'रिष्ट' कहानी में नायिका अपने बेटे को ग्रह दोष से बचाने के लिए योगी-शिकारी बनाने के लिए मजबूर हो जाती है।

मिथिलेश्वर की कहानी 'हरिहर काका' पारिवारिक विघटित जीवन मूल्य को उजागर करती है। आज धन को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसके सामने भाई, बाप, सगे संबंधियों का महत्त्व नहीं रहा गया। केवल महंत ही नहीं बल्कि सगे भाई लोग भी गले दबाने के लिए प्रस्तुत है। उदय प्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले का करधन' पारिवारिक जीवन मूल्य पर आधारित है। शैली और शिल्प की दृष्टि से यह स्वप्नचित्र की तरह प्रस्तुत होता है। ग्रामीण जीवन की संवेदनाओं से ऊपर समग्र पूंजीवादी व्यवस्था को व्याख्यायित करता है।

जगन्नाथ प्रसाद दास की कहानी 'सहदोर' में जमीन-जायदाद के लिए भाइयों के बीच होने वाले तनावों को दिखाया गया है। घर पर बीमार पिता जी को बोझ समझते है पर 'हरिहर काका' के चरित्रो के जैसे गले दबाने के लिए हिम्मत नहीं है। शायद कथाकार की दृष्टि में ओड़ीसा के निवासी ज्यादा निर्दयी नहीं बने हैं।

शिवमूर्ति की कहानी 'कसाइबाड़ा' में राजनीति के आड़ में होनेवाला दुरनीति का जीता जागता चित्र है। राजधानी की राजनीति अब गाँव तक भ्रष्ट नीति बनकर अब पहुँच चुकी हैं। गाँव में शिक्षकता करने वाले लोग भी राजनेता बनकर रातों-रात अमीर बनने का सपना देखने लगे है और गाँव वाले भी बाली का बकरा बन रहे हैं। ओड़िया कथा साहित्य में मानवतावादी कथाकार के रूप में परिचित वसंत कुमार सत्पथी की कहानी 'उन्नयन' निम्न वर्गों की समस्याओं को दिखाती है। सारी योजनाओं का पेशे उच्च वर्ग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए हड़पते है और खुद को गाँव का प्रतिनिधि कहलाते हैं। हिन्दी कहानी में जहां प्रतिरोध का स्वर सुनने को मिलता है वहाँ उड़िया कहानी में केवल शोषण के खिलाफ न्याय के लिए प्रार्थना बिनती करके रह जाते हैं।

मिथिलेश्वर की कहानी 'तिरिया जनम' और शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' में ग्रामीण जीवन की नारियों का शोषण का चित्र है। मिथिलेश्वर की नायिका सुनयना पंख कटे पंछी की तरह है। उसकी स्वधिनता छिन ली जाती है। जब की 'तिरिया जनम' की नायिका विमली पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाती है। सुनयना पति के द्वारा प्रताड़ित और विवश है पर विमली ससुर के द्वारा प्रताड़ित व्यवस्था के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार है। ओड़िया

साहित्य की कथा लेखिका वीणापाणी महान्ती को नारी जीवन के भाष्यकार के रूप में जाना जाता है। उनकी 'पाटदेई' कहानी में ग्राम्य समाज की शोषित नारी का चित्र है। पाटदेई ससुराल में दहेज के लिए प्रताड़ित होने के बाद पिता जी के गाँव में बलात्कार का शिकार बन जाती है। इज्जत लूट जाने के बाद पिताजी को मुंह दिखाकर अपमान करना संभव नहीं होता। अतः गाँव छोड़कर चली जाती है। अंत में उसकी पुत्र संतान होने पर इस पर प्राशन चिह्न लगाया जाता है। वीणापाणी महान्ती ने उस चरित्र को ऐसी शक्ति दे दी है कि वह सबके मुखौटे के पीछे काले चेहरे को दीखाने के लिए कामयाब होती है। तीनों कहानी में परिवेश अलग होते हुए भी नारी कि समस्या में समरूपता है।

कहानी आंदोलन से मुक्त कथाकार रामदरश मिश्र कि कहानी "सर्पदंश" ग्रामीण किसानों की समस्या को उजागर करती है। कथाकार कि भाषा में में "जिस गाँव-देहात में पैदा हुआ पला, प्रारम्भिक शिक्षा पायी, अभाव, दुख और संघर्ष के सघन अनुभवों से गुजरा वह गाँव देहात मुझे तरह तरह से अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है।" कहानी में किसान है एक किसान है प्रधान साहब दूसरा है गोकुल। प्रधान वह प्रतिनिधि वर्ग है जो गोकुल जैसे निम्न वर्ग के किसानों के लहलहाते खेत देखकर लाड़ बहाता है। किसी न किसी रूप में उसके खेत को हथियाने कि कोशिश में लगे रहते है , छोटी मछली को बड़ी मछली को खा जाने की तरह। समकालीन ओड़िया कथा साहित्य के प्रमुख कथाकार हृषिकेश पंडा की कहानी 'साहब देवता' किसानों के विकास के लिए की जाने वाली नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करती है। जो किसान योजना के अंतर्गत किसानों के लिए बीज, कीटनाशक, सिंचाई के साधन दी जाने की घोषणा होती रहती है। इस योजना के विकास में कितनी सच्चाई है, कहना मुश्किल है पर ये सच है कि खेती कि वजह से वह आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाता है।

अंतत कहा जा सकता है नवें दशक की हिन्दी और ओड़िया कहानियों में परिवेशगत भिन्नता होते भिन्नता होते हुये भी कथ्य में समरूपता है।